स्वतन्त्रता पूर्व भारत में निर्वाचन की राजनीति का विकास

पदम चन्द्र मौर्य
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय महाविद्यालय थानागाजी, राजस्थान

लोकतंत्र को संचालित करने के लिए निर्वाचन आवश्यक है। नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग निर्वाचन के माध्यम से ही करते है। निर्वाचनों के द्वारा ही सरकार का गठन होता है तथा जनता का सरकार पर नियंत्रण रहता है। अतः स्वतंत्रता उपरान्त भारतीय संविधान में निर्वाचन व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 326 के द्वारा भारतीय नागरिकों को वयस्क मताधिकार प्रदान किया गया।[1] स्वाधीन भारत में भारतीय नागरिकों को मताधिकार की प्राप्ति मात्र कोई संयोग नहीं था, अपितु इसके पीछे एक दीर्घ राजनीतिक संघर्ष का इतिहास निहित है। मताधिकार अर्थात मत देने का अधिकार या वह अधिकार जिसके माध्यम से सरकार का चयन या गठन किया जाता है।

पराधीन भारत में भारतीयों को अपनी सरकार चुनने या बनने का अधिकार प्राप्त नहीं था। स्वतंत्रता पूर्व भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था तथा सम्पूर्ण भारत ब्रिटिश दासत्व के दंश को भोग रहा था। भारत में अंग्रेजी शासन की पृष्ठभूमि का इतिहास सन् 1600 ई. से आरम्भ हुआ माना जाता है, जब अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के साथ व्यापार करना प्रारम्भ किया।[2] 1600 ई. से 1857 तक का काल भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य रहा। कम्पनी के शासन के लगभग 100 वर्षों में राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और सैनिक क्षेत्र में अनेक ऐसी प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जिन्होंने भारतीय जनता को कम्पनी के शासन का प्रबल विरोधी बना दिया।[3] इन सब परिस्थितियों के मिश्रित परिणाम स्वरूप जिस जन विद्रोह का 1857 में सूत्रपात हुआ, उसे भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा किए गए आर्थिक शोषण के कारण भारत में विभिन्न वर्ग असंतुष्ट थे। ये वर्ग भारत के विकास में ब्रिटिश शासन को बाधा मानने लगे थे तथा राष्ट्रीय विकास के लिए राजनीतिक शक्ति अपने हाथों में लेना चाहते थे। भारतीयों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय आंदोलन प्रारम्भ किया।[4] ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा अपनाई गई प्रशासनिक नीतियों के विरूद्ध विकसित राष्ट्रीय भावना का पहला विस्फोट 1857 ई. में हुआ। इस क्रान्ति के परिणास्वरूप भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और उसके स्थान पर ब्रिटिश सरकार का सीधा शासन स्थापित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने लगभग 90 वर्ष (1858–1947) तक भारत पर शासन किया। इस अवधि में उसने भारत के प्रशासन के लिए अनेक अधिनियम पारित किए, जिनमें 1858, 1861, 1892, 1909, 1919 एवं 1935 के अधिनियम उल्लेखनीय है।[5]

1861 का भारत परिषद् अधिनियम भारतीय संवैधानिक और राजनैतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण अधिनियम था। इसके द्वारा कानून बनाने की प्रक्रिया में भारतीय प्रतिनिधियों को शामिल करने की शुरूआत हुई। इस प्रकार

वायसराय कुछ भारतीयों को विधान परिषद् में गैर – सरकारी सदस्यों के रूप में नामांकित कर सकता था। 1862 में लॉर्ड कैनिंग ने तीन भारतीयों—बनारस के राजा, पटियाला के महाराज और सर दिनकर राव को विधान परिषद में मनोनीत किया। बंगाल, उत्तर—पश्चिम सीमा प्रांत और पंजाब में क्रमशः 1862, 1866 और 1897 में विधान परिषदों का गठन हुआ।[6] मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों को विधायी शक्तियां पुनः देकर विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत विधायी विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसके कारण 1937 तक प्रांतों को सम्पूर्ण आंतरिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई।[7]

1892 के अधिनियम के माध्यम से केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में अतिरिक्त (गैर—सरकारी) सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। इसने विधान परिषदों के कार्यो में वृद्धि कर उन्हें बजट पर बहस करने और कार्यपालिका के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अधिकृत किया। अन्य शब्दों में इस अधिनियम के अन्तर्गत लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्यों को बजट पर बहस करने तथा जनहित के मामलों में प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया।[8] इसमें केन्द्रीय विधान परिषद में गैर—सरकारी सदस्यों के नामांकन के लिए वायसराय की शक्तियों का प्रावधान था। इसके अलावा प्रांतीय विधान परिषदों में गवर्नर को जिला परिषद्, नगरपालिका, विश्वविद्यालय, व्यापार संघ, जमींदारों और चैम्बर ऑफ कॉमर्स की सिफारिशों पर गैर—सरकारी सदस्यों को नियुक्त करने की शक्ति थी। इस अधिनियम में केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों दोंनो के गैर—सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक सीमित और परोक्ष रूप से चुनाव का प्रावधान किया गया हालांकि चुनाव शब्द का अधिनियम में प्रयोग नहीं हुआ था। इसे निश्चित निकायों की सिफारिश पर की जाने वाली नामांकन की प्रक्रिया कहा गया।[9] 1892 का अधिनियम इस रूप में विशेष है कि इसमें निर्वाचन प्रणाली को आरम्भ किया गया, लेकिन यह निर्वाचन प्रणाली सीमित एवं भेद—भावपूर्ण थी।[10]

1909 के अधिनियम को मार्ले—मिंटो सुधार के नाम से भी जाना जाता है। इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों के आकार में वृद्धि की गई। केन्द्रीय परिषद में इनकी संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई, लेकिन प्रांतीय विधान परिषदों में इनकी संख्या एक समान नहीं थी। गैर—सरकारी सदस्य सरकारी सदस्यों से अधिक हो सकते थे। इस अधिनियम के द्वारा पहली बार किसी भारतीय को वायसराय और गवर्नर की कार्य परिषद में स्थान दिया गया। सत्येंन्द्र प्रसाद सिन्हा को वायसराय की कार्यपरिषद में प्रथम भारतीय सदस्य बनाया गया। उन्हें विधि सदस्य बनाया गया।[11] इस अधिनियम में पृथक निर्वाचन के आधार पर मुस्लिमों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया गया। इसमें प्रेसिडेंसी कॉरपोरेशन, चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स, विश्वविद्यालयों और जमींदारों के लिए अलग प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी किय गया।[12]

1919 में भारत शासन अधिनियम बनाया गया, जो 1921 से लागू हुआ। इस कानून को मांटेग्यू—चैम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता है। इस अधिनियम के द्वारा प्रांतों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। इस हेतु केन्द्र और प्रांतों के मध्य विषयों का बंटवारा किया गया।[13] केन्द्रीय और प्रांतीय विषयों को पृथक—पृथक

सूचीबद्ध कर केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों को अपने–अपने विषयानुसार विधान बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। प्रांतीय विषयों को पुनः दो भागों में हस्तांतरित और आरक्षित में विभक्त किया गया। हस्तांतरित विषयों पर गवर्नर का शासन होता था और इस कार्य में वह उन मंत्रियों की सहायता लेता था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी थे। आरक्षित विषयों पर गवर्नर कार्यपालिका परिषद की सहायता से शासन करता था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। शासन की इस दोहरी व्यवस्था को द्वैध शासन कहा गया। इस अधिनियम ने पहली बार देश में द्विसदनीय व्यवस्था और प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था प्रारम्भ की।

इस प्रकार भारतीय विधान परिषद के स्थान पर द्विसदनीय व्यवस्था अर्थात राज्यसभा और लोकसभा का गठन किया गया। दोनों सदनों के बहुसंख्यक सदस्यों को प्रत्यक्ष निर्वाचन के माध्यम से निर्वाचित किया जाता था। इसके अनुसार वायसराय की कार्यकारी परिषद से 6 सदस्यों में से एक सदस्य कमांडर–इन–चीफ को छोड़कर 3 सदस्यों का भारतीय होना आवश्यक था। इसने साम्प्रदायिक आधार पर सिखों, भारतीय ईसाईयों, आंग्ल–भारतीयों और यूरोपियों के लिए भी पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को विस्तारित कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा सीमित आधार अर्थात संपत्ति, कर या शिक्षा पर भारतीयों को मताधिकार प्रदान किया गया।[14] मतदान का अधिकार बड़े–बड़े जमींदारों तथा उपाधियां प्राप्त व्यक्तियों को दिया गया था। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को हिन्दू, पारसी या ईसाइयों के मुकाबले अधिक मताधिकार दिया गया था। तीन हजार रूपये की आमदनी पर कर देने वाले मुसलमानों को मत देने का अधिकार था, किन्तु इससे कही अधिक आय पर कर देने वाले हिन्दूओं को यह अधिकार प्राप्त नहीं था।[15] ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेंमजे मैकडोनाल्ड ने अगस्त 1932 में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर एक योजना की घोषणा की। इसके अनुसार न सिर्फ मुस्लिमों, सिख, ईसाई, यूरोपियनों और आंग्ल–भारतीयों के लिए अलग निर्वाचन व्यवस्था का विस्तार किया बल्कि इसे दलितों के लिए भी विस्तारित कर दिया गया।

भारत शासन अधिनियम, 1935 यह अधिनियम भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार के गठन की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। यह एक लंबा और विस्तृत दस्तावेज था। जिसमें 321 धाराएं और 19 अनुसूचियां थी। इस अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय संघ की स्थापना की गई, जिसमें राज्य और रियासतों को एक इकाई की तरह माना गया। अधिनियम में केन्द्र और इकाइयों के बीच तीन सूचियों (संघीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची) के आधार पर शक्तियों का बंटवारा किया गया। अवशिष्ट शक्तियां वायसराय को दी गई।[16] इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था समाप्त कर प्रांतीय स्वायत्तता का शुभारंभ किया गया। राज्यों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान किया गया। अर्थात गवर्नर को राज्य विधान परिषदों के लिए उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर काम करना आवश्यक था। इसके द्वारा 11 राज्यों में से 6 राज्यों में द्विसदनीय व्यवस्था प्रारम्भ की। बंगाल, बंबई, मद्रास, बिहार, संयुक्त प्रांत और असम में द्विसदनीय व्यवस्था अर्थात विधान परिषद और विधानसभा का गठन किया गया। इसने दलित जातियों, महिलाओं और मजदूर वर्ग के लिए अलग से निर्वाचन की व्यवस्था कर

सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विस्तार किया। इस अधिनियम द्वारा मताधिकार का विस्तार कर लगभग 10 प्रतिशत भारतीयों को मत देने का अधिकार दिया गया।[17]

1935 के अधिनियम के अनुसार प्रांतीय एवं केन्द्रीय विधान परिषद के चुनाव घोषित किए गए और कांग्रेस ने इसमें भाग लिया।[18] 1937 के चुनावों में कांग्रेस का प्रदर्शन बहुत अच्छा रहा। उसे कुल 1585 असेम्बली सीटों में से 711 पर विजय प्राप्त हुई। 11 में से 5 प्रांतों (मद्रास, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रांत और संयुक्त प्रांत) में पूर्ण बहुमत मिला और बंबई में लगभग पूर्ण बहुमत (175 में 85) मिला। सरकारी समर्थन के बावजूद संयुक्त प्रांत में छतारी के नवाब की नेशनल एग्रीकल्चरिस्ट पार्टी और मद्रास में जस्टिस पार्टी को मुंह की खानी पड़ी। मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस का प्रदर्शन बहुत मामूली रहा। 482 आरक्षित सीटों में से कांग्रेस 58 पर चुनाव लड़ी और 26 पर विजयी रही थी, लेकिन मुस्लिम लीग भी मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का अपना दावा सिद्ध करने में असफल रही। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में लीग एक भी सीट नहीं प्राप्त कर सकी। मुस्लिम लीग पंजाब में 84 आरक्षित सीटों में से केवल 02 और सिंध के 35 में से मात्र 03 स्थान पर ही जीत दर्ज कर सकी। अनुसूचित जातियों की अधिकांश सीटें भी कांग्रेस ने प्राप्त कर ली थी। मात्र बंबई में डॉ. अम्बेडकर की इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने हरिजनों के लिए आरक्षित 15 क्षेत्रों में से 13 स्थानों पर जीत दर्ज की।[19]

चुनावों में कांग्रेस की सफलता ने उसकी स्थिति मजबूत कर दी थी और शीघ्र ही कांग्रेस द्वारा मंत्रिमंडल गठित करने के लिए दबाव पड़ने लगे। मार्च 1937 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल ने ''सशर्त पद ग्रहण करने'' के संबंध में एक प्रस्ताव रखा। शर्त यह थी कि प्रांत में कांग्रेस असेंबली पार्टी का नेता ''संतुष्ट हो और सार्वजनिक रूप से वक्तव्य दे सके कि गवर्नर अपनी विशेष शक्तियों का उपयोग नहीं करेगा।[20] यद्यपि ब्रिटिश सरकार द्वारा ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया गया, लेकिन कांग्रेस द्वारा ऐसा मानते हुए कि गवर्नरों के लिए अपनी विशिष्ट शक्तियों का प्रयोग करना सरल नहीं होगा।'' मंत्रिमण्डल बनाने का फैसला किया गया। संयुक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रांत, बंबई और मद्रास में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने पदभार संभाला और कुछ महीनों पश्चात् पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में, सितम्बर 1938 में असम में भी कांग्रेस मंत्रिमंडल बन गया।[21]

आरम्भ में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के सभी घटकों को बहुत प्रेरित किया। वामपंथी रूझान वाले छात्र, श्रमिक और किसान आंदोलनों एवं संगठनों की बड़ी प्रगति हुई और लोकप्रिय मंत्रिमंडलों के गठन से अनेक रजवाड़ों में भी शीघ्र ही सामंतशाही विरोधी एवं निरंकुशता–विरोधी भारी आंदोलन खड़े होने लगे।[22] 1937 से 1939 तक प्रांतों में कांग्रेसी सरकार का शासन लगभग 27 माह रहा और सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध होने से परिस्थितियां बदल गई।

देश की आजादी के बाद सबसे बड़ी क्रान्ति यह थी कि लोकसभा तथा राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचन के लिए सार्वजनिक वयस्क मताधिकार को अपनाया गया। घोर पिछड़ेपन, घोर दरिद्रता तथा घोर निरक्षरता

वाले नए–नए स्वाधीन हुए देश में, हर नागरिक को, जिसकी आयु 21 वर्ष से कम न हो, जो संविधान संशोधन (61वां संशोधन अधिनियम, 1988) के द्वारा घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है और जो किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्तविकृत्ति, अपराध या भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर अन्यथा अयोग्य न हो, मतदान का अधिकार दिया गया।[23]

इस प्रकार भारत में निर्वाचन की राजनीति के विकास में ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित कुछ अधिनियमों का विशिष्ट योगदान रहा। ब्रिटिश सरकार ने लगभग 90 वर्ष (1858–1947) तक भारत पर शासन किया। इस अवधि में उसने भारत के प्रशासन के लिए अनेक अधिनियम पारित किए, जिनमें 1858, 1861, 1892, 1909, 1919 एवं 1935 के अधिनियम उल्लेखनीय है। 1861 का भारत परिषद् अधिनियम भारतीय संवैधानिक और राजनैतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण अधिनियम था। इसके द्वारा कानून बनाने की प्रक्रिया में भारतीय प्रतिनिधियों को शामिल करने की शुरूआत हुई। 1892 के अधिनियम के माध्यम से केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में अतिरिक्त (गैर–सरकारी) सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। इसने उन्हें बजट पर बहस करने और कार्यपालिका के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अधिकृत किया। 1909 के अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों के आकार में वृद्धि की गई। इस अधिनियम के द्वारा पहली बार किसी भारतीय को वायसराय और गवर्नर की कार्य परिषद में स्थान दिया गया। 1919 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा प्रांतों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई। भारत शासन अधिनियम, 1935 यह अधिनियम भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार के गठन की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन व्यवस्था समाप्त कर प्रांतीय स्वायत्तता का शुभारंभ किया गया। राज्यों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का प्रावधान किया गया।

सन्दर्भ सूची

1. आर. सी. अग्रवाल, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन एम.चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 294
2. एन. डी. अरोड़ा, राजनीति विज्ञान, टाटा एस सी ग्रा एजुकेशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2013 पृ. पृ.17.1
3. पुखराज जैन, भारतीय राज व्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2007, पृ. 1
4. एन. डी. अरोरा, नोट–2, पृ.17.2 – 17.3
5. एन. डी. अरोरा, नोट–2, पृ.17.2 – 17.3
6. एम. लक्ष्मीकांत, भारत की राजव्यवस्था, एम. सी. ग्रा हील एजुकेशन प्रा. लिमिटेड, न्यू देहली 2014, पृ. 1.5
7. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.6
8. शर्मा – पावा पृ. 479
9. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.6
10. एन. डी. अरोरा, नोट–2, पृ.17.3

11. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.6

12. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.6

13. एन. डी. अरोरा, नोट–2, पृ.17.4

14. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.7

15. एन. डी. अरोरा, नोट–2, पृ.17.3

16. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.7

17. एम. लक्ष्मीकांत, नोट–6, पृ. 1.8

18. पत्रिका ईयर बुक 2015 पृ. 433

19. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पृ. 369

20. सुमित सरकार, नोट–19, पृ. 370

21. सुमित सरकार, नोट–19, पृ. 371

22. सुमित सरकार, नोट–19, पृ. 371

23. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली 2005 पृ.